हर इन्सान-एक समान

एक राष्ट्र-एक जान

मेरा भारत महान

समता ज्योति

वर्ष : 10 अंक : 1 देश के राष्ट्रवादी नागरिकों को समर्पित मासिक-पत्र 25 जनवरी, 2020

Website: www.samtaandolan.co.in, E-mail: samtaandolan@yahoo.in मूल्य: प्रति अंक-5 रूपये, सालाना- 50 रूपये

"जातिगत आरक्षण के रास्ते चलना मूर्खता ही नहीं, विध्वंसकारी है।"

-पं. जवाहरलाल नेहरू (27 जून, 1961 को प्रधानमंत्री के रूप में मुख्यमंत्रियों को लिखे पत्र से)

अवमानना पर याचिका बंद की गई

नई दिल्ली। बजरंग लाल शर्मा विरूद्ध राजस्थान सरकार वो केस है जिस पर समता आन्दोलन को पहली संवैधानिक जीत हासिल हुई थी। लेकिन इस केस के मुख्य याचक बजरंग लाल शर्मा रिटायर्ड आर.ए.एस को केस जीत के बाद भी कोई लाभ नहीं मिला था।

इसी विषय पर सुप्रीम कोर्ट में अवमानना याचिका लगभग आठ साल तक चलने के बाद हाल ही उसे बंद करके आदेश दिया गया है कि राजस्थान हाईकोर्ट 11.09.11 और भटनागर समिति के विरूद्ध लम्बित याचिकाओं को छ: महिने के भीतर-भीतर निस्तारित करे।

इस फैसले का दूरगामी असर पड़ना सम्भावित है।

सुप्रीम कोर्ट में दलित इसाईयों ने की आरक्षण की माँग

पं नेहरू ने 1961 में प्रदेशों को लिखे पत्र में कहा था वो समता ज्योति के हर अंक में प्रकाशित हो रहा है। उसी क्रम में देश के कथित इसाईयों ने सुप्रीम कोर्ट से गुहार लगाई है कि उन्हें भी एस.सी. कोटे में शामिल करके आरक्षण का लाभ दिया जावे। हालांकि सन् 1950 में संवैधानिक एस.सी आदेश के तीसरे पैरे में मूल अछूत इसाईयों को एस.सी स्टेट्स देने से मना किया है। इसे ही चुनौति देने वाली याचिका मुख्य न्यायाधीश शरद ए बोबड़े की बैंच में लगाई गई है और इसपर केन्द्र सरकार को नोटिस भी जारी हो गये हैं।

नेशनल कौंसिल ऑफ दलित क्रिश्चियन्स की तरफ से दायर याचिका में मांग की गई है कि मूल रूप से दलित इसाईयों को भी एससी की सूची में शामिल किया जावे।

वकील फ्रैंकलिन थॉमस और एस गौथमन ने बेंच को कहा कि धर्म बदल लेने से सामाजिक बहिष्कार समाप्त नहीं होता है। इसके लिये एट्रोसिटी एक्ट 1989 जो 2018 में बदल दिया गया है का हवाला भी दिया गया है।

इस पर मुख्य न्यायाधीश ने टिप्पणी की है कि ये थोड़ा विचारणीय है। इस पर एडवोकेट ने कहा कि जाति आरक्षण को धर्म से नहीं जोड़ना चाहिये। और 1950 का आदेश अवसरों की समानता के मूल अधिकार के विरूद्ध है। अत: धर्म परिवर्तन कर इसाई बने मूल दलितों को भी आरक्षण का लाभ दिया जाना चाहिये।

20 भारतीय प्रबंध संस्थानों की केंद्र सरकार को चिट्ठी- नौकरियों में आरक्षण से दें हमें मुक्ति

नई दिल्ली। पिछले दिनों 20 आईआईएम ने मानव संसाधन विकास मंत्रालय से आग्रह किया कि उन्हें केंद्र सरकार की तरफ से अधिसूचित केंद्रीय शैक्षिक संस्थान (रिजर्वेशन इन टीचर कैडर्स) एक्ट 2019 में वर्णित इंस्टीट्यूशन ऑफ एक्सिलेंस में शामिल किया जाए।

भारतीय प्रबंधन संस्थान ने सामुहिक रूप से केंद्र सरकार को फैकल्टी में आरक्षण को लेकर पत्र लिखा है। 20 संस्थानों की तरफ से लिखे गए पत्र में केंद्र से कहा गया है कि संस्थानों को फैकल्टी के पदों पर भर्ती में अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्गों, आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए आरक्षण से छूट दे दी जाए।

पिछले सप्ताह 20 आईआईएम ने मानव संसाधन विकास मंत्रालय से आग्रह किया कि उन्हें केंद्र सरकार की तरफ से अधिसूचित केंद्रीय शैक्षिक संस्थान (रिजर्वेशन इन टीचर कैडर्स) एक्ट 2019 में वर्णित इंस्टीट्यूशन ऑफ एक्सिलेंस में शामिल किया जाए। इस एक्ट से सेक्शन 4 में इंस्टीट्यूट ऑफ एक्सिलेंस, शोध संस्थानों, राष्ट्रीय और सामरिक महत्व के संस्थानों और अल्पसंख्यक संस्थानों को आरक्षण देने से छूट प्रदान करता है। वर्तमान में टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, नेशनल ब्रेन रिसर्च सेंटर, नॉर्थ-ईस्टर्न इंदिरा गांधी रीजनल इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ एंड मेडिकल साइंस, जवाहर लाल नेहरू सेंटर फॉर एडवांस्ड साइंटिफिक रिसर्च, फिजिकल रिसर्च लैबोरेट्री, स्पेस फिजिक्स लैबोरेट्री, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ रिमोट सेंसिंग और होमी भाभा नेशनल इंस्टीट्यूट और इनकी 10 इकाइयां केंद्रीय शैक्षिक संस्थान (रिजर्वेशन इन टीचर कैडर्स)एक्ट 2019 के सेक्शन 4 के तहत आती हैं।

खबर में सूत्र के हवाले से कहा गया है कि चूंकि इसमें आरक्षण से छूट है इसलिए आईआईएम की तरफ से इस आशय का आग्रह किया गया है। इन प्रबंधन संस्थानों का तर्क है कि इनकी भर्ती प्रक्रिया निष्पक्ष है और ये लोग इसी प्रक्रिया के तहत वंचित वर्ग के लोगों को भी नौकरी पर रखने का प्रयास कर रहे हैं। इन संस्थानों की तरफ से यह मांग केंद्र सरकार के उस निर्देश के संदर्भ में आई है जिसमें पिछले महीने सरकार की तरफसे आदेश दिया गया था कि फैकल्टी पदों पर नौकरियों में एससी, एसटी, ओबीसी और आर्थिक रूप से वंचित वर्ग के लोगों को भी आरक्षण का लाभ दिया जाए। IIMS में नियुक्तियों को लेकर आरक्षण का मुद्दा सालों से विवादों में रहा है।

जो लोग पहले से आरक्षण का फायदा ले चुके वो छोड़ दें सुप्रीमकोर्ट जस्टिस सिरपुरकर

नागपुर: सुप्रीम कोर्ट जस्टिस ने आरक्षण को लेकर बड़ा बयान दे दिया है, कहा जो इससे लाभान्वित हो चुके वो सुविधा छोड देंगे तो ये जरूरतमंदों तक पहुंचेगा। आरक्षण को लेकर राजनीति हमेशा गर्म रहती है लेकिन इस पर ज्यादातर पार्टियाँ साइलेंट मोड में रहती हैं क्योंकि वोटबैंक का सबसे बड़ा मुद्दा रहता है। वहीं देश की सबसे बडी अदालत में जज पद पर आसीन रहे वीएस सिरपुरकर ने आरक्षण की व्यवस्था को लेकर अहम बात कही है। नागपुर के डॉक्टर एपीजे अब्दुल कलाम हाल में समाजसेवी संस्था सेव मेरिट सेव नेशन द्वारा आयोजित एक परिचर्चा में जज सहित विभिन्न क्षेत्रों के अन्य गणमान्य व्यक्तियों ने इस पर अपने विचार रखे। पैनल में प्रमुख रूप से सुप्रीम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश जस्टिस वीएस सिरपुरकर, जिन्होंने चर्चा की अध्यक्षता करते हुए कहा '' आरक्षण का लाभ छोडने के लिए तैयार लोग देश को वास्तविक रूप से बचाएंगे।'' उन्होंने बताया कि जिसको आरक्षण की असली जरूरत हैं वो इससे दूर है और जरूरतमंदों तक तभी संभव होगा जब लाभ लेने वाले इसे छोड़ दें। जस्टिस सिरपुरकर ने अपने बयान में कहा '' पिछले सत्तर सालों में आरक्षण व्यवस्था का लाभ कतार में खडे व्यक्ति तक नहीं पहुंचा है। यह ऐसे लोगों तक तब पहुंचेगा, जब पहले से सशक्त हो चुके लोग सुविधा छोड़ देंगे।''

जस्टिस सिरपुरकर के बारे में आपको बता दें कि वो देश के प्रतिष्ठित जजों में से एक हैं। ये वही जज हैं जिनकी अध्यक्षता में सुप्रीम कोर्ट द्वारा आदेशित 3 सदस्यीय समिति चर्चित हैदराबाद एनकाउंटर की जाँच कर रही है।

अध्यक्ष की कलम से

लोकतंत्र कहने से नहीं सहने से चलता है

प्रिय साथियों,

हम सब जानते है कि अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने सभ्य जगत को लोकतंत्र की जो परिभाषा दी वह अपनी सम्पूर्णता में मानवीय नैतिकता की प्रतिध्वनि है। लोकतंत्र में हिंसा को स्थान नहीं होता। यहाँ सभी को सभी स्तर तक अपनी बात कहने और न्याय पाने का अधिकार है। यह न्याय अन्तत: न्यायालय के माध्यम से ही प्राप्त होता है।

लोगों का लोकतंत्र की न्याय व्यवस्था में कितना और कैसा अटूट विश्वास होता है यह इस तथ्य से प्रमाणित हो जाता है कि देश की अदालतों में तीन करोड़ से अधिक मुकदमें लम्बित हैं। यदि एक मुकदमें में दोनों पक्षों के मात्र आठ लोग भी प्रभावित मानें जायें तो प्राय: 24 करोड़ न्याय की आशा में तारीखों पर तारीख की पीड़ा सहन कर रहे हैं।

हम यानि समता आन्दोलन का तो मूल उद्देश्य ही संवैधानिक शुचिता को स्थापित करना है। इसलिये तारीख पर तारीख की पीड़ा हम भी सहन कर रहे हैं। पाठकों को जानकर आश्चर्यमिश्रित क्षोभ हो सकता है कि राजस्थान में आरएएस से आईएएस की पदोन्नति में आरक्षण के खिलाफ बजरंग लाल शर्मा विरूद्ध राज्य की जो रिट लगी थी उसमें जीतने के बाद सुप्रीम कोर्ट की अवमानना का मामला पिछले आठ सालों से लम्बित रहा।

हमारे अनुभव इससे भी अधिक कड़वे हैं। सुप्रीम कोर्ट के एक मुख्य न्यायाधीश ने चार साल तक हमारी रिट को दबाये रखा और अपने रिटायरमेंट के ठीक पहले उसे हाईकोर्ट को भेज दिया। इससे भी बुरा उदाहरण ये है कि दो जजों (सुप्रीम कोर्ट) की बेंच ने कुल मिलाकर दस जजों की बेंच को मनमाने तरीके से उलट दिया। लेकिन सहने के अलावा हम कर क्या सकते हैं ?

हालांकि राजस्थान का गुर्जर आंदोलन, हरियाणा का जाट आंदोलन, गुजरात का पटेल आन्दोलन जिस तरह से हिंसक हुए और उनकी मांगे मानी गई तो मन में अवश्य आता है कि सरकारें यदि हिंसा को ही सुनना पसंद करती हैं तो फिर हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट की आवश्यकता ही क्या है ? इससे आगे की बात ये है कि सरकारें सुप्रीम कोर्ट के आदेशो को संविधान के अनुसार न लेकर अपनी सुविधा के अनुसार लेती हैं। इससे न्यायाप्रिय लोगों का हौसला डगमगाता है लेकिन फिर भी वे न्याय की आशा में बार-बार अदालत की उसी चौखट पर जाते हैं जो उनके साथ तारीख पर तारीख का मजाक करती है ?

कई बार साफलगता हैं कि सरकारी जड़ता के खिलाफ्न जाकर अदालतें ऐसा निर्णय देती हैं जिसका न्याय से कोई सीधा सम्बंध नहीं होता। फिर भी न्यायप्रिय लोग अदालत में जो कहते हैं अदालत से बाहर उसकी पीड़ा सहते हैं। यह कोई स्वस्थ व्यवस्था नहीं है और यदा-कदा इसके खिलाफ जन आक्रोश फट पड़ता है और वे अदालत की गोद से न्याय को जबरन अपहरित कर लेने का प्रयास करते हैं। ऐसी घटनाऐं बार-बार देखने-सुनने को मिलने लगी हैं।

सभी जानते है कि सहने की सीमा होती है। लेकिन भारतीय संदर्भ में देखें तो यहाँ कोई सीमा नहीं है। हाल ही एक महिला को चालीस साल बाद न्याय मिला। क्या इसे न्याय कहा जा सकता है ? फिर भी उस महिला के मुख पर एक मुस्कान और शांति दिखाई दीं। शायद वो भी जानती है कि लोकतंत्र कहने से नहीं सहने से चलता है।

सादर।

सम्पादकीय

काश! हम सब हो नामपट्टिका

हालांकि फागुन और होली थोड़ा दूर हैं। फिर भी एक छोटी सी घटना ने प्रेरित किया कि इस बार का सम्पादकीय हास्य-व्यंग्य का हो तो कैसा रहे! यू हुआ कि एक विवाह में बाराती बनकर जाने का अवसर मिला। वहाँ मुख्यद्वार पर ही कन्यापक्ष वालों ने बारातियों के स्वागत का जो तरीका अपनाया वो अच्छा तो लगा पर थोड़ी देर बाद ही मन बदल गया।

कन्यापक्ष वालों ने हर स्त्री बाराती को सुन्दर, मोतियों का बना एक कंगन दिया। जबकि नर बारातियों के कोट या स्वेटर पर एक प्यारा सा बैज पिन कर दिया। बैज में ऊपर मयूरपंख लिये धातु की पट्टी और उससे लटकती चार-2 मोतियों की चार लड़ियाँ थीं। सभी को अच्छा लगा। सजे हुए हॉल में जाकर बैठे तब किसी मित्र ने धातु की पट्टी पढ़कर बताया कि उस पर रोमन अंग्रेजी में ''लडके वाले '' लिखा था। पता लगते ही अपने को थोड़ा धक्का लगा और तत्काल बैज को उतार जेब में छुपा लिया। मित्रों में चुहलबाजी शुरू हो गई। कुछ मीठे, तीखे, कसैले वाक्य सुनने को मिले। हम कुछ समझ न पा रहे थे तो धर्मपत्नी ने कहा- आप लोग जैसा सोच रहे हैं वैसा कुछ नहीं है। असल में कन्यापक्ष वालों ने घराती-बराती का फर्क स्पष्ट करने के लिए ऐसा इसलिये किया है कि सेवादार बारातियों का विशेष ध्यान रखें। बात छोटी सी थी समझ में तो आ गई लेकिन हमारे उर्वर दिमाग के घोड़े दौडने लगे। हमने सोचा कि एट्रोसिटी एक्ट-18 के तहत जो अनेक मनमाने और झूठे केस हो रहे है उससे बचने के लिये सरकार क्यों न एट्रोसिटी एक्ट-20 लाये और उसमें प्रावधान कर दिया जाये कि प्रत्येक एस.सी/एस.टी का व्यक्ति अपने बाँये सीने पर ऐसी ही एक नेमप्लेट लगाये जिसपर उसकी विशेषता दर्ज हो तो बाकी लोग उनके सम्मान में रास्ता छोड़कर अलग हो जायें। इससे अदालतें, प्रशासन और सामान्य जन सूकून की साँस ले सकेंगे।

उर्वर दिमाग रूका नहीं। उसने आगे सोचा कि क्यों न ऐसे ही विशेषण वाली नेमप्लेट सरकारी कर्मचारी और अफसर भी लगायें। ताकि सामान्य दुखी इन्सान पहली नजर में ही समझ जाये कि उसकी पीड़ा कम होगी या बढेगी ? अब पुलिस वाले तरह-तरह के सितारे, कलर बगैरा लगाकर बताना चाहते हैं कि वे क्या हैं और किस रैंक के हैं। यदि वे सीधे ही एस.पी, डीआईजी, आईजी, एडीजी, डीजीपी की प्लेट लगायें तो कितनी सुविधा हो जायेगी देश के जनमानस को ? तभी अचानक दिमाग ने मूंछों पर ताव देते हुए कुछ समझाया।

कुछ को बहुत कुछ समझने की हमारी योग्यता ने दिमाग को मानों हिलाकर बताया कि भाई आंकडों के अनुसार रेल्वे में सफाई कर्मियों की 65-68 प्रतिशत संख्या कथित सवर्णों की है। उन्हें भी अपनी वर्दी की कमीज पर ब्राह्मण सफाई कर्मी, क्षत्रिय सफाई कर्मी आदि की नाम पट्टिका अवश्य लगानी चाहिये इससे जहाँ उनका मनोबल बढेगा वहीं जातीय समरसता का फैलाव बिना विज्ञापन धन खर्च किये होता रहेगा।

इस तरह की नेम प्लेट के प्रयोग सरकार में भी किये जा सकते हैं जहाँ कई अफसरों पर जाँच चल रही होती हैं। जाँच भी भ्रष्टाचार और दूसरे अपराधों की। ये जाँचें सालों-साल चलती रहती हैं। अब यदि ऐसे कर्मचारियों, अधिकारियों के सीने पर फलाँ सिंह, लाल, अर्मा, धर्मा जाँच अधीन की प्लेट लगी हो तो जनता का कितना भला हो सकेगा ?

यानि सरकार यूँ ही सीएए और एनपीआर और न जाने किस-किस मामले में दिनरात परेशान हो रही है। यदि नामपट्टिका फार्मूला अपनाया जावे तो देश का कितना भला हो सकता है ? बल्कि हम तो यहाँ तक भी कहेंगे कि इन दिनों देशद्रोही और देशप्रेमी की बहस बहुत चल रही है। क्यों न हर नागरिक को छूट दे दी जाये कि वो अपनी ऐसी पहचान की पट्टिका खुद बनवाकर लगा ले? जय हो नाम पट्टिका की।

जय समता।

योगेश्वर झाड़सरिया

आरक्षित जनप्रतिनिधियों को संतुलित रखती है लोकतांत्रिक मर्यादा

मोटे तौर पर देखने पर लोकतंत्र एक खुरदरी और बिखरी-छितरी व्यवस्था दिखाई देती है। लेकिन भीतरी जड़ों पर ध्यान दें तो आभास होता है कि यहां कहने से ज्यादा सहने का महत्व है। यह बात चुने गये सांसदों और विधायकों पर सीधे लागू होती है। वे दोषी होते हुये भी निर्दोष दिखाई देते है। उनका ऐसा दिखना एक संरचनात्मक मजबूरी है क्योंकि उनका चुना जाना उनके अपने समुदाय के वोटों पर निर्भर ही नहीं है। मिसाल के तौर पर जिग्नेश मेवानी वडगाम सीट पर 15 प्रतिशत दलित वोटर की वजह से नहीं, 85 प्रतिशत ग़ैर-दलित वोटरों के समर्थन से चुने गए हैं। उस सीट के सारे दलित मिलकर भी कभी किसी को जिता नहीं सकते. सुरक्षित सीटों पर कोई भी ऐसा जनप्रतिनिधि चुनकर नहीं आ सकता, जो दलित या आदिवासी हितों के लिए आक्रामक तरीके से संघर्ष करता हो, और ऐसा करने के क्रम में अन्य समुदायों को नाराज़ करता हो। संसद और विधानसभा में सीटों के रिज़र्वेशन की व्यवस्था पर सवाल उठाने का समय आ गया है। बेहतर होगा कि ये सवाल ख़ुद अनुसूचित जाति और जनजाति के अंदर से आएं। इस दिशा में समता आन्दोलन पहल कर चुका है।

संविधान का अनुच्छेद 334, हर दस साल पर दस और साल जुड़कर बदल जाता है। इसी प्रावधान की वजह से लोकसभा की 543 में से 79 सीटें अनुसूचित जाति और 41 सीटें अनुसूचित जनजाति के लिए रिज़र्व हो जाती हैं। वहीं, विधानसभाओं की 3,961 सीटों में से 543 सीटें अनुसूचित जाति और 527 सीटें जनजाति के लिए सुरक्षित हो जाती हैं। इन सीटों पर वोट तो सभी डालते हैं, लेकिन कैंडिडेट सिर्फ एससी या एसटी का होता है। लोकसभा और विधानसभाओं में आज़ादी के समय से ही अनुसूचित जाति और जनजाति का उनकी आबादी के अनुपात में प्रतिनिधित्व रहा है। सवाल यह उठता है कि इतने सारे दलित और आदिवासी सांसद और विधायक अपने समुदाय के लिए करते क्या हैं? नेशनल क्राइम रेकॉर्ड्स ब्यूरो के इस साल जारी आंकड़ों के मुताबिक इन समुदायों के उत्पीड़न के साल में 40,000 से ज़्यादा मुकदमे दर्ज हुए। यह आंकड़ा साल दर साल बढ़ रहा है। जाहिर है कि इन आंकड़ों के पीछे एक और आंकड़ा उन मामलों का होगा, जो कभी दर्ज ही नहीं होते हैं।

क्या दलित उत्पीड़न की इन घटनाओं के ख़िलाफ़ दलित सांसदों या विधायकों ने कोई बड़ा, याद रहने वाला आंदोलन किया है? ऐसे सवालों पर, संसद कितने बार ठप की गई है और ऐसा रिज़र्व कैटेगरी के सांसदों ने कितनी बार किया है? जैसे कि हम देख सकते हैं कि देश की 43 सेंट्रल यूनिवर्सिटी में एक भी वाइस चांसलर अनुसूचित जाति का नहीं है या कि केंद्र सरकार में सेक्रेटरी स्तर के पदों पर अक्सर एससी या एसटी का कोई अफसर नहीं होता। शासन के उच्च स्तरों पर अनुसूचित जाति और जनजाति की अनुपस्थिति क्या अनुसूचित जाति और जनजाति के सांसदों के लिए चिंता का विषय है? चूंकि सरकारी नौकरियों की संख्या लगातार घट रही है और हाल के वर्षों में निजी क्षेत्र में आरक्षण की मांग उठी है, लेकिन क्या अनुसूचित जाति और जनजाति के सांसदों और विधायकों के लिए यह कोई मुद्दा है? इसी तरह की एक मांग उच्च न्यायपालिका में आरक्षण की भी है। ख़ासकर संसद की कड़िया मुंडा कमेटी की रिपोर्ट में न्यायपालिका में सवर्ण वर्चस्व की बात आने के बाद से यह मांग मज़बूत हुई है. लेकिन क्या अनुसूचित जाति और जनजाति के सांसदों ने कभी इस मुद्दे पर संसद में पुरज़ोर तरीक़े से मांग उठाई है? 120 से ज़्यादा एससी और एसटी सांसदों के लिए किसी मुद्दे पर संसद में हंगामा करना और दबाव पैदा करना मुश्किल नहीं है। इन सांसदों का एक ग्रुप भी है और जो अक्सर मिलते भी हैं लेकिन देश ने कभी इन सांसदों को अपने समुदायों के ज़रूरी मुद्दों पर आंदोलन छेड़ते नहीं देखा है।

अगर ये सांसद अपने समुदाय के सवालों को नहीं उठाते तो फिर वे चुने कैसे जाते हैं? क्या उन्हें हारने का भय नहीं होता? यह वह सवाल है, जिसमें इन सांसदों और विधायकों की निष्क्रियता का राज छिपा है। संविधान की व्यवस्था के मुताबिक, अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए सीटें आरक्षित हैं, लेकिन वोटर तमाम लोग होते हैं। किसी भी आरक्षित लोकसभा सीट पर अगर मान लें कि 20 फीसदी अनुसूचित जाति के वोटर हैं, तो 80 फीसदी वोटर अन्य समूहों के हैं। अनुसूचित जाति के किसी नेता का सांसद चुना जाना इस बात से तय नहीं होगा कि अनुसूचित जाति के कितने लोगों ने उसे वोट दिया है। अनुसूचित जनजाति की कुछ सीटों को छोड़ दें, जहां एसटी वोटर 50 फीसदी से ज़्यादा हैं तो ज़्यादातर आरक्षित सीटों की यही कहानी है। चुना वह जाएगा जो आरक्षित समूह से बाहर के ज़्यादातर वोट हासिल करेगा। आरक्षित चुनाव क्षेत्रों के इस गणित का मतलब यह है कि अगर कोई नेता अनुसूचित जाति के आरक्षण को लेकर आंदोलन करेगा या निजी क्षेत्र में आरक्षण की मांग करेगा, तो दूसरे समुदायों की आंख में उसका खटकना तय है। यह उस नेता के लिए राजनीतिक आत्महत्या का रास्ता होगा। यह पूरी तरह विवशता की स्थिति है। आप अनुसूचित जाति-जनजाति के सांसद हैं, पर अनुसूचित जाति-जनजाति के सवालों पर आप मुखर नहीं हो सकते।

इसके अलावा एक और समस्या है। भारत में ज़्यादातर सांसद किसी न किसी दल से चुने जाते हैं। यह रिज़र्व सीटों से चुने जाने वाले सांसदों के लिए भी सच है। संविधान की दसवीं अनुसूची, यानी दलबदल कानून की वजह से ये सांसद दलीय अनुशासन से बंधे होते हैं, वरना उनकी सदस्यता छिन सकती है। ऐसे में जब तक राजनीतिक दलों की नीतियां अनुसूचित जाति और जनजाति के पक्ष में न हों, तब तक रिज़र्व कैटेगरी से चुनकर आने वाले सांसदों और विधायकों के लिए करने को ख़ास कुछ नहीं होता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण संसद की वह घटना है जब एससी और एसटी के लिए प्रमोशन में आरक्षण का विधेयक फाड़ने का दायित्व समाजवादी पार्टी ने एक एससी सांसद यशवीर सिंह को सौंपा और उन्होंने यह कर दिखाया. यशवीर सिंह उस समय उत्तर प्रदेश की नगीना लोकसभा सीट से सांसद थे। इस सीट पर एससी 21 फीसदी हैं और मुसलमान 53 फीसदी। नगीना रिज़र्व सीट से सांसद बनने के लिए एससी वोट से ज़्यादा महत्वपूर्ण मुसलमान और अन्य समूहों के वोट हैं इसलिए यशवीर सिंह ने एससी के हित के ऊपर समाजवादी पार्टी को रखा क्योंकि उनका गणित रहा होगा कि मुसलमान वोट उन्हें सपा में होने के कारण मिलेंगे। एक उदाहरण बीजेपी सांसद उदित राज का भी है। आईआरएस की नौकरी छोड़कर उन्होंने अनुसूचित जाति और जनजाति का परिसंघ बनाया। इन समुदायों के हितों के सवाल पर वे सबसे ज़्यादा मुखर स्वर में से एक रहे। लेकिन जब तक वे यह करते रहे, तब तक अनुसूचित जाति ने भी उन्हें अपना नेता नहीं माना और वे कोई चुनाव नहीं जीत पाए। लेकिन बीजेपी में शामिल होते ही इन्हें सवा छह लाख से ज़्यादा वोट मिल गए। ज़ाहिर है कि अनुसूचित जाति के वोटर भी अपने हितैषी को नहीं, किसी पार्टी के कैंडिडेट को ही चुनते हैं। तो जीतने के बाद वह कैंडिडेट किसे ज्यादा महत्वपूर्ण मानेगा? यह एक सरल गणित है। अब शायद समय आ गया है कि ऐतिहासिक पूना पैक्ट की वजह से चली आ रही सुरक्षित सीटों वाली इस व्यवस्था को ख़त्म करके वो सिस्टम लाया जाए जिसके हामी डा0 आंबेडकर थे. डा0 आंबेडकर चाहते थे कि सेपरेट इलेक्टोरेट यानी सिर्फ़ दलित और आदिवासी वोटर ही अपने प्रतिनिधि चुनें। उन सीटों पर दूसरा प्रतिनिधि भी हो, जिनका चुनाव बाकी लोग करें। अब सब देख रहे हैं कि पूना पैक्ट की दुर्बल संतानें, यानी एससी और एसटी सीटों पर चुने गए जनप्रतिनिधि किस तरह बेअसर साबित हुए हैं.

पौराणिक कथन : "उमावन"

कैलाश पर्वत पर स्थित एक विशेष वन जहाँ शंकर ने अर्धनारीश्वर का रूप धारण किया।

कब तक देते जाओगे तुम,
कि बहुत हुआ अब रोक भी दो।
आरक्षण को बना ताबूती,
कीलें आखरी ठोक भी दो।।

'समता आन्दोलन के सदस्य बने और बनाएं'

कविता

संविधान की रक्षा करता है अपना गणतंत्र

आज बताते हैं हम तुमको एक काम का मंत्र।
संविधान की रक्षा करता है अपना गणतंत्र।।
आजादी के लिए सभी ने
कष्ट भयानक झेले।
कभी लौह के चने चबाये,
कभी आग से खेले।।
वीरों की खातिर कवियों ने
गीत लिखे अलबेले।।
और चिताओं पर हम उनकी
खूब सजाते मेले।।
संविधान के बिना अधूरी
आजादी रह जाती।
अगर हाथ में लोकतंत्र का
न होता संयंत्र।।
संविधान की रक्षा करता.....
संविधान में लिखे नियम को
लागू कौन कराता।
सत्ता की बोटी-बोटी को
सबल लूट ले जाता।।
कैसे जुड़ पाता शोषित का
शासन से फिर नाता।
दीन हीन को यहां नींद से
कोई जगा न पाता।।
संविधान को प्रजातंत्र के
बिना अगर ले आते।
शोषित और दबा कुचला
तो रह जाता परतंत्र।।
संविधान की रक्षा करता.....
छोटे और बडे का जिसने
सभी मिटाया भेद।
उनको भी रोका है,
करते जो थाली छेद।।
ऐसी मिली व्यवस्था जिस पर
नहीं किसी को खेद।
नहीं गया बेकार,
बहाया गया रक्त अरू श्वेद।।
न्याय व्यवस्था, कार्यपालिका
साथ मिले हैं इसमें।
तब जाकर तैयार हुआ है
भारत में यह यंत्र।।
आज बताते हैं हम तुमको एक काम का मंत्र।
संविधान की रक्षा करता है अपना गणतंत्र।।

सुरेन्द्र सार्थक

नियुक्ति के लिए योग्यता ही एकमात्र निर्णायक शर्त

गतांग से आगे:-

पलड़ा एकंगा हो गया

लोकवाद जैसे राजनीतिक वर्ग पर हावी हो गया वैसे ही उसने सार्वजनिक बहस की दशा और दिशा पर भी अपना प्रभाव जमा लिया; न्यायालय भी उसकी पकड़ में आ गया है। शुरू में बात की जा रही थी एक संतुलन स्थापित करने की, लेकिन जल्दी ही पलड़े को एक ओर भारी किया जाने लगा। पेरियाकरूप्पम मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि ''अधिकतम योग्य अभ्यर्थियों को शामिल करने से राष्ट्र को होनेवाले तात्कालिक हितों और वंचित अथवा पिछड़े वर्ग (के अभ्यार्थियों) को ऊपर उठाने के परिणामस्वरूप होनेवाले दीर्घकालिक हितों के बीच एक संतुलन होना चाहिए। दलितों को ऊपर उठाने, उन्हें सार्वजनिक स्वास्थ आदि की अच्छी-से-अच्छी सेवाएँ उपलब्ध कराने का सबसे अच्छा उपाय क्या यह नहीं है कि इन सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि सेवाओं में सर्वाधिक योग्य और कुशल कर्मचारीयों को ही नियुक्त किया जाए? सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा था, ''ऐतिहासिक कारणों के चलते प्राप्त लाभों को मौलिक अधिकार नहीं बनाया जा सकता।'' प्रश्न था समानता का। जिस सिद्धांत को न्यायालय ने आज स्वयं अपना लिया है उसके अनुसार, निम्न जातियों के सदस्य संविधान के अंतर्गत दिए गए समानता के मौलिक अधिकार का दावा नहीं कर रहे हैं, बल्कि वे ऐतिहासिक कारणों के चलते प्राप्त लाभों को अपना मौलिक अधिकार बनाकर उस पर दावा कर रहे हैं।

मध्य प्रदेश राज्य बनाम निवेदिता जैन मामले तक पहँचते-पहुँचते पलड़ा उलटा ही कर दिया गया। इस मामले में भी सर्वोच्च न्यायालय के सामने उच्च शिक्षण संस्थानों का मसला था। वस्तुत: इसमें एम.आर. बालाजी मामले की तरह मेडिकल कॉलेजों का सवाल ही न्यायालय के समक्ष था। किंतु इस बार सर्वोच्च न्यायालय ने ही कहा कि आरक्षित सीटें भरने के लिए सरकार अर्हता शर्तों में आवश्यकतानुसार किसी भी हद तक छूट दे सकती है, अर्हता शर्तों को समाप्त भी कर सकती है। इस मामले में शर्त यह भी थी कि अभ्यार्थी के लिए न्यूनतम निर्धारित अर्हता अंक प्राप्त करना आवश्यक है। सर्वोच्च न्यायालय का कहना था कि ऐसा करने से शिक्षा के स्तर में गिरावट नहीं आएगी, क्योंकि प्रवेश प्राप्त कर लेने और शिक्षा में आगे बढ़ जाने पर (आरक्षण-प्राप्त) अभ्यार्थियों को भी एक जैसा सामान्य अर्हता स्तर प्राप्त करना होगा। अत: इस बात को लेकर हमें बिलकुल डरने की बात नहीं है कि इस प्रकार अर्हता शर्तों में छूट के बल पर चिकित्सकीय पाठ्यक्रम पूर्ण करने वाले चिकित्सकों से हमें कोई समस्या हो सकती है।''

भरती का चलन

न्यायमूर्ति एच.आर. खन्ना और न्यायमूर्ति ए.पी.सेन ने अपनी ओर से संविधान में किए गए प्रावधान का अर्थ स्पष्ट करने की कोशिश की, लेकिन लोकवाद की आक्रामकता के आगे कुछ नहीं चला। एन.एम.थॉमस मामले में न्यायमूर्ति खन्ना ने संविधान में की गई उस व्यवस्था की ओर ध्यान आकृष्ट किया था, जिसमें अनुसूचित जातियों और जनजातियों की निर्बलता को दूर करने की बात की गई है; लेकिन ऐसा उन्होंने एक अलग ही अंदाज में किया था- इस व्यवस्था से प्रशासन की गुणवत्ता के स्तर में कोई गिरावट नहीं आएगी। अनुच्छेद 335 में किए गए प्रावधान के अनुसार, ''सेवा अथवा विभाग की कुशलता या गुणवत्ता को बनाए, रखने के लिए आवश्यक न्यूनतम शैक्षिक अथवा अन्य योग्यता स्तर में ढील नहीं दी जा सकती।''

> अनुच्छेद 335 में किए गए प्रावधान के अनुसार, ''सेवा अथवा विभाग की कुशलता या गुणवत्ता को बनाए, रखने के लिए आवश्यक न्यूनतम शैक्षिक अथवा अन्य योग्यता स्तर में ढील नहीं दी जा सकती।''

आवश्यक न्यूनतम योग्यता में छूट दिए जाने के मामले पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपनी मुहर लगाए जाने के चार वर्ष बाद न्यायमूर्ति ए.पी.सेन ने इस प्रकार की व्यवस्था के दुष्परिणामों के प्रति सतर्क किया था। मामला फिर सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया और इससे संबंधित वाद के मामलों में न्यायालय ने जो निर्णय दिया, उससे स्पष्ट हो जाता है कि लोकवाद किस प्रकार और किस हद तक सर्वोच्च न्यायालय पर हावी रहा है। न्यायमूर्ति सेन ने स्पष्ट करने की कोशिश की कि योग्यता शर्तों में इस प्रकार ढ़ील दिए जाने से सेवाओं की गुणवता व कुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। उन्होंने यह भी कहा कि देश को इस स्थिती से बचाने के लिए संविधान में व्यवस्था की गई है। ''मैं कहना चाहूँगा कि अनुच्छेद 15(4) और अनुच्छेद 16(4) में की गई संरक्षणात्मक भेद की व्यवस्था तथा अनुच्छेद 29(2) के प्रावधानों को एक निश्चित सीमा से आगे नहीं ले जाया जाना चाहिए।'' उन्होंने कहा था। ''सरकार जनता की सेवा के लिए है। कुछ सेवाएँ ऐसी हैं, जिनमें कुशलता और विशेषज्ञता आवश्यक होती है। उदाहरण के लिए, सरकार के अधीन चलनेवाला एक अस्पताल बीमार लोगों की चिकित्साकीय सेवा करता है। चिकित्सकीय सेवाओं का जनता के स्वाथ्य और जीवन पर सीधा प्रभाव पडता है। पायलटों और उड्डयन अभियंताओं के लिए जानकारी अनुभव पर आधारित व्यावसायिक सेवाओं पर निर्भर होता है। इसी तरह अन्य क्षेत्र भी है, जिनमें तकनीकी, वैज्ञानिक, व्यावसायिक एवं अन्य दक्षता की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की सेवाओं में-जो संघ अथवा राज्य सरकार के अधीन हैं-हमारे विचार से पदों के आरक्षण के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। इनमें नियुक्ति के लिए योग्यता को ही एकमात्र निर्णायक शर्त माना जाना चाहिए।''

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि इस प्रकार की टिप्पणियाँ पहले से ही बहुत कम देखने-सुनने में आ रही थीं और यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि सर्वोच्च न्यायालय पहले ही कई कदम नीचे आ गया था-यानी स्तर को काफी नीचे तक गिरा दिया था। पहले तो उसने प्रत्येक संस्थान मे, प्रत्येक स्थिति में अर्हता स्तर को एक समान बनाए रखने की बात की थी, उसके बाद स्तर को थोड़ा नीचे गिराते हुए उसने यह नियम कुछ विशेष संस्थानों और उनमें भी कुछ विशेष विषयों अथवा संकायों तक सीमित कर दिया। जैसा न्यायमूर्ति ए.पी.सेन की टिप्पणी में हमने देखा था। और फिर, इसमें एक अलग ही शर्त जोड़ दी गई-''विशिष्टता (अथवा विशेषज्ञता) और अति-विशिष्टता(अथवा अति-विशेषज्ञता) के मामले में कोई आरक्षण नहीं होगा।'' यह टिप्पणी थी सर्वोच्च न्यायालय की, जो उसने इंद्रा साहानी मामले में की थी। अपनी इस टिप्पणी में न्यायालय की, जो उसने इंद्रा सहानी मामले में की थी। अपनी इस टिप्पणी में न्यायालय ने अभियांत्रिकी, उड्डयन और चिकित्सा सेवाओं का उदाहरण प्रस्तुत किया था, जैसा न्यायमूर्ति ए.पी.सेन ने किया था। लेकिन उसके बाद क्या हुआ, यह हमें आगे देखने को मिलेगा।

इसके बाद सर्वोच्च न्यायालय ने भी तथ्यों की ओर से आँखें बंद कर लीं। न्यायालयों-जिनमें सर्वोच्च न्यायालय भी शामिल है-के फैसलों पर विहंगम दृष्टि डालने पर भी हमें कई ऐसे मामले और फैसले मिल जाएँगे, जिनमें शब्दों, तिथियों आदि में सूक्ष्मतम भेद का सहारा लिया गया है। लेकिन हमारे सक्रियतावादी न्यायाधीश जब कथित सामाजिक न्याय की बात करते हैं तो इन्हीं तथ्यों और सच्चाइयों की रोशनी में अपनी बात रखने की कोशिश करते हैं, जिनकी ओर से न्यायालयों-न्यायाधीशों ने अपनी आँखें बंद कर ली हैं। अजय कुमार सिंह मामलें में भी कुछ ऐसा ही देखा गया। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता ने एक बार कहा था कि यदि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रस्तावित सिद्धांत समान रूप से लागू किा जाता तो इससे कार्यपालिका की संसदीय परिधि में हस्तक्षेप होता।साथ ही इस मामले में जो नियम-निरूपण किया गया था, उसके आधार ही एक राज्य की सरकार अपने इस प्रासधान पर आगे बढ़ गई थी कि ''प्रवेश परीक्षा में एक अंक प्राप्त करनेवाला आरक्षण-प्राप्त श्रेणी का कोई अभ्यार्थी उस स्थिती में (भी) स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में प्रवेश के लिए अर्ह होगा, जब खुली प्रतियोगितावाले अभ्यार्थियों के लिए आवश्यक न्यूनतम अर्हता अंक 50 प्रतिशत हो।'' अधिवक्ता ने कहा था कि इससे ''शिक्षा का स्तर निश्चित रूप से प्रभावित होगा।''

... शेष अगले अंक में

अरूण शौरी की पुस्तक 'आरक्षण का दंश' से साभार

राष्ट्रीय कार्यकारिणी की मैराथन मीटिंग ने समता आन्दोलन को नई गति देने का लिया संकल्प

जयपुर। 11 जनवरी। प्रदेश मुख्यालय पर राष्ट्रीय अध्यक्ष पाराशर नारायण शर्मा की अध्यक्षता में राष्ट्रीय कार्यकारिणी की मैराथन बैठक करके तेरह बिंदुओं पर चर्चा के बाद सहमति बनी। अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में अध्यक्ष ने कहा कि समता आन्दोलन के एस.सी/एस.टी प्रकोष्ठ बहुत अच्छे ढ़ग से काम कर रहे हैं। इन दिनों नये राजनैतिक परिवर्तन के रूप में एस.सी, एस.टी. और अल्पसंख्यक को मिलाकर एक नया समीकरण उभारने का प्रयास दृष्टिगोचर हो रहा है। इससे हमारी जिम्मेदारी बढ़ गई है। हम देश को और बढ़िया बनाना चाहते हैं। समता सिद्धांत के तहत हम एस.सी/एस.टी में भी क्रीमीलेयर का प्रावधान लागू करवाना चाहते हैं। दूसरी तरफ आरक्षण का पूरा दृश्यपटल बदल डालने के लिए ई.डब्ल्यू.एस का आरक्षण एक बहुत सुन्दर दूरगामी कदम है। अब देश में कुल मिलाकर कोई भी जातीय समूह अनारक्षित नहीं है। इससे परस्पर बढ़ते जातीय विद्वेष में कमी आई है। सुप्रीम कोर्ट में चल रही रिट पिटिशन की चर्चा करते हुए बताया गया कि क्रीमीलेयर अनुसूचित जाति-जनजाति में भी लागू करवाने की रिट में इन समूहों के अन्य लोग भी याचक बनकर आये तो स्वयं सुप्रीम कोर्ट द्वारा कहा गया कि '' आपकी तरफ से ये (समता के एस.सी-एसटी प्रकोष्ठ) यहाँ हैं तो सही''- यह हमारे लिये बेहद सुकून और गर्व की बात है।

मीटिंग एजेंडे में से पहले बिंदु पर सबने उत्साह से सहमति दी कि हमारे आंदोलन की तरफ से एससी-एसटी-ओबीसी-ई.बी.एस-ई.डब्ल्यू.एस के बच्चों को एक साथ रखकर कोचिंग शुरू की जा रही है। इसपर हर माह लगभग पच्चीस हजार रूपये का व्ययभार बढ़ेगा लेकिन यह समतावाद की धुरि सिद्ध होगा। इसकी जिम्मेदारी एस.सी प्रकोष्ठ के अध्यक्ष राकेश वर्मा पूरी निष्ठा से निभा रहे हैं। इसी क्रम में एस.सी/एस.टी के कतिपय अति सक्रिय लेकिन आर्थिक रूप से कमजोर सदस्यों को न्यूनतम आर्थिक सहयोग का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ जो समता आन्दोलन के साथ लगातार संघर्ष कर रहे हैं।

मीटिंग में पास हुआ एक प्रस्ताव इन दिनों सोशल मीडिया पर काफी चर्चित हो रहा है। इसके अनुसार समता आन्दोलन राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर सामान्य वर्ग आयोग गठन पर अग्रसर हो गया है। इस आयोग के गठन से पहला काम तो ये होगा कि जहाँ समता आन्दोलन नहीं बोल पा रहा है वहाँ ये आयोग गठन प्रकोष्ठ मुखर होगा। इसी प्रकोष्ठ द्वारा सामान्य वर्ग आयोग गठन की माँग की जायेगी। साथ ही केन्द्र सरकार से यह भी मांग की जायेगी कि एट्रोसिटी एक्ट की धाराओं का विस्तार सब जातीय समाजों तक किया जाये ताकि उन्मादी लोग इन धाराओं का दुरूपयोग न कर सकें और सामान्य वर्ग के विरूद्ध विष-दमन से रोका जा सके। ठीक इसी तर्ज पर अल्पसंख्यक प्रकोष्ठ के गठन पर भी सहमति मनी।

महामंत्री आर एन गौड ने दिल्ली में राष्ट्रीय कार्यालय की स्थापना के सम्बंध में प्रस्ताव किया कि कुछ निर्णय अध्यक्ष की शक्तियों में शामिल होने से उनपर चर्चा की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। सभी ने सहमति दी और ये प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ कि सभी प्रदेशों में समता आन्दोलन अध्यक्ष और एक संरक्षक भी मनोनीत हों। इसके लिए सुप्रीम कोर्ट, हाईकोर्ट के पूर्व जज, रिटायर्ड डी जी पी, मुख्य सचिव, ब्रिगेडियर स्तर के अथवा समकक्ष हस्तियों को एप्रोच किया जाकर वहाँ पर प्रदेश कार्यकारिणी का गठन भी हो।

पूर्व में स्वीकृत सांसद सलाहकार परिषद गठन के प्रस्ताव पर पुन: चर्चा के बाद माना गया कि राजस्थान के सातों संभागों में एक साल के भीतर-भीतर ये परिषदें बनवाकर अगले साल से अन्य प्रदेशों में भी बनें। इसके लिये राष्ट्रीय स्तर की प्रतिष्ठित हस्ती को साथ लेने की आवश्यकता स्वीकार की गई। इसके लिये यह भी माना गया कि प्रत्येक प्रदेश में समता आंदोलन का खाता खुलवाया जावे और कम से कम एक-एक रिट भी लगवाई जावे तथा इन कार्यों को संभव करने के लिए प्रदेश स्तर पर बड़े आयोजन भी हों।

उपाध्यक्ष योगेन्द्रसिंह मेघसर ने प्रस्ताव किया कि हमारी कौन-कौन सी रिट याचिकाऐं किस-किस हाई कोर्ट अथवा सुप्रीमकोर्ट में लम्बित चल रही हैं रिटों की सूची बनाकर सभी कोर कमेटी/संस्थापक सदस्यों के अलावा कार्यकारिणी के सदस्यों को भेजी जावें। प्रस्ताव स्वीकृति के साथ ही यह सूचना सबको दी गई कि सुप्रीम कोर्ट में प्रमोशन के आरक्षण के विरूद्ध जरनैल सिंह के मामले में रिट चल रही है तथा बजरंग लाल शर्मा की अवमानना याचिका पर सुनवाई पूरी हो चुकी है निर्णय रिजर्व है। इसके अलावा एस.सी/एस.टी प्रकोष्ठ की क्रीमीलेयर लागू करवाने की रिट, गुर्जर आरक्षण पर दो एस एल पी एवं एक रिट लम्बित है। निकट भविष्य में लगाई जाने वाली याचिकाओं पर चर्चा करते हुए अध्यक्ष ने बताया कि आरक्षण जो अगले दस साल बढाया गया है इसके विरूद्ध एस.सी/एस.टी की तरफसे ये रिट लगेगी कि सीटों का आरक्षण समाप्त करके पार्टियों में टिकटों का आरक्षण शुरू किया जावे। दूसरी तरफ देश में सैंकडों अवमानना याचिकाऐं लम्बित हैं जिनपर सरकारें करोडों रूपये जनकोष से खर्च करती हैं जबकि इसके पीछे अधिकारियों की सुस्ती, नासमझी और लापरवाही जिम्मेदार होती है। अत: ऐसे सभी अवमानना केसों के खर्च स्वयं अधिकारी उठायें ऐसी याचिका लगाई जायेगी और यदि वे केस जीत जाते है तो उनका खर्चा वापस हो जायेगा।

यह भी निर्णय हुआ कि हालांकि जरनैल सिंह केस का निर्णय गलत हुआ है लेकिन समता आन्दोलन उसके खिलाफ न जाकर एम. नागराज के निर्णय को लागू करवाने की रिट दायर करेगा। प्रदेश में ओ.बी.सी.आरक्षण को लेकर नीट में बहुत बड़ी संख्या में अनारक्षित लोगों को लाभ दिलवाने के बाद अब स्थानीय निकाय चुनाव को लेकर राजस्थान हाईकोर्ट में रिट चल रही है और फायनल हियरिंग होगी। संविधान के आर्टिकल 15/16 के लिये सभी प्रदेशों को ज्ञापन व नोटिस भेजे जा चुके हैं। उनपर आर टी आई भी लग चुकी है। रिट लगभग तैयार है। ऐसी एक रिट एट्रोसिटी एक्ट में मुआवजे को लेकर तैयार हो चुकी है। सुप्रीम कोर्ट में याचिकाओं की सुनवाई हिंदी में करवाने के लिये भी याचिका पर विचार स्वीकृत हुआ। समता आन्दोलन के ग्यारह साल पूरे हो जाने पर एक स्मारिका प्रकाशन का पूर्व प्रस्ताव फिर से चर्चा में लिया गया। प्राय: एक करोड़ के खर्च की संभावना वाले प्रस्ताव पर तेजी से काम करने का निर्णय हुआ। यह स्वीकार किया गया कि एक पांच सदस्यीय समिति बनाकर उसका नेतृत्व एन. के. झामड़ को सौंपा जाये। यह भी निर्णय हुआ कि प्रयास करके 11 मई 2020 को स्मारिका का विमोचन कर दिया जावे।

सोशल मीडिया पर समता आंदोलन की बढ़ती लोकप्रियता की सभी ने सराहना की और ये स्वीकार किया गया कि प्रत्येक संभाग, जिला, तहसील पदाधिकारी फेसबुक अकाउंट बनाये और उसकी मित्र संख्या 5000 तक पहुँचाये तथा समता समिति के पटल को एक लाख तक लाईक्स और शेयर मिल सकें। इसी तरह यू ट्यूब पर सब्सक्राईब करने वालों की संख्या पाँच लाख तक पहुँचाई जावे।

एक बड़ा फैसला ये हुआ कि राजधानी दिल्ली में अगले साल दिवाली तक एक लाख लोगों की रैली की जावे। इसके लिये सभी प्रदेशों में अभी से सक्रियता शुरू हो जावे और राष्ट्रीय मुख्यालय पर हर महिने समीक्षा बैठक की जावे। इसी के जुड़ा प्रस्ताव रखते हुए महामंत्री आर.एन.गौड ने कहा कि अध्यक्ष जयपुर के संभाग प्रमुख श्रीकांत शर्मा के साथ जिलों की यात्रा शुरू करें और हर-हर पखवाडे में दो जिले कवर करें। सभी ने स्वीकृत किया।

सामाजिक सरोकारों की दृष्टि से प्रदेशों में हर एम.पी. के क्षेत्र में पॉलिथीन मुक्ति के लिये एक-एक लाख कपड़े के थैले बंटवाये जावें जिसके एक तरफ एम.पी का परिचय हो और दूसरी तरफ समता आन्दोलन का परिचय दिया जावे इसके लिये सी.एस.आर. से फंड लेने का प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ। साथ में समता वृक्ष और पीपल वाटिकाऐं लगाने का प्रस्ताव भी स्वीकृत हुआ।

मीटिंग में अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, महामंत्री के अलावा श्रीकांत शर्मा, दिपक सिंघल, बी.एम.शर्मा, एन.एल. सिंगडोदिया, एन.के.झामड, दुल्हासिंह चूंडावत, देवकीनन्दन शर्मा, कैलाश राजपुरोहित, ऋषिराज सिंह, समता ज्योति के सम्पादक योगेश्वर नारायण शर्मा, मध्यप्रदेश के प्रदेशाध्यक्ष अशोक कुमार, उत्तरप्रदेश के प्रदेशाध्यक्ष गिरजेश शर्मा उपस्थित रहे। -समता डेस्क

समता आन्दोलन के सदस्यों से निवेदन है कि समता ज्योति आपका अपना अखबार है। इसमें प्रकाशित करने के लिए अपने विचार, कविता, समाचार, आदि-आदि मुख पृष्ठ पर दिये ई-मेल पते पर या डाक से भेजे।

न कोई जाति न कोई वर्ण सारे भारतीय सवर्ण।

प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी-समता आंदोलन समिति, प्रकाशन स्थान- 68, भारतेन्दु नगर, खातीपुरा, जयपुर, मुद्रण स्थान- इन्दु प्रिण्टर्स, कुचीलपुरा बीकानेर, सम्पादक-योगेश्वर शर्मा। Website:www.samtaandolan.co.in